International Journal of Emerging Trends in Science and Technology
IC Value: 76.89 (Index Copernicus) Impact Factor: 4.219 DOI: https://dx.doi.org/10.18535/ijetst/v4i9.41

रवीन्द्रनाथ टैगोर के षिक्षा के सम्बन्ध में विचार

(Thinking about Rabindranath Tagore's education)

लेखक (Author)
डा0 कंचन कुमार
विभागाध्यक्ष, बी0एड0 विभाग
बी0आर0एस0बी0एस0एम0पी0जी0 कॉलेज,
बबराला (सम्भल)
(Dr. Kanchan Kumar Head of Department, B Ed. B R S B M M PG College, Babrala (sambhal))

सारांष :–

रवीन्द्रनाथ टैगोर वर्तमान भारत के शैक्षिक पुररूत्थान के सबसे बड़े पैगम्बर थे। उन्होंने अपनी शैक्षिक संस्थाओं में ऐसे शैक्षिक प्रयोग किये जिन्होंने उन्हें आदर्श का सजीव प्रतीक बना दिया। टैगोर ने 1901 ई0 में 'शान्ति निकेतन' नाम से एक विद्यालय की स्थापना की। सन् 1921 ई0 में यह 'विश्वभारती विश्वविद्यालय' के रूप में विकसित हो गया। यह उनकी शैक्षिक विचारधाराओं का ही परिणाम है कि आज इस विश्वविद्यालय में देश–विदेश के हजारों छात्र विद्या ग्रहण कर रहे हैं।

टैगोर के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य पूर्ण जीवन की प्राप्ति के लिए मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना है। उनके अनुसार बालक का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक और नैतिक विकास करना ही शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य होने चाहिए। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए टैगोर ने पुस्तकीय ज्ञान का सहारा लेने से मना किया। टैगोर पुस्तकीय ज्ञान के विरोधी थे। टैगोर ने स्वतन्त्र चिन्तन पर बल दिया है। उनका मानना था कि बालकों की स्मृति पर अधिक भार नहीं डाला जाना चाहिए। बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए उन्होंने प्रकृति और जीवन के सामंजस्य को आवश्यक माना है। टैगोर ने पाठ्यक्रम में सांस्कृतिक विषयों को शामिल करने पर जोर दिया है। उन्होंने शिक्षण विधियों में नृत्य, अभिनय, दस्तकारी आदि को स्थान देकर शारीरिक क्रिया को महत्व दिया और इस प्रकार क्रिया विधि का प्रयोग किया। टैगोर ने स्त्री–शिक्षा और प्रौढ़–शिक्षा पर भी बल दिया है। उन्होंने लड़कियों के लिए गृह–विज्ञान जैसे विषयों की वकालत की है। इस प्रकार टैगोर का पूरा शिक्षा–दर्शन प्रकृतिवादी विचारधारा से प्रभावित है।

प्रस्तावना :–

वर्तमान समय में रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा–दर्शन की व्याख्या उस पुरानेपन से ही सम्बन्धित है जो अस्सी–नब्बे वर्ष पूर्व तक स्वयं नया था। इतने समय का व्यवधान काफी लम्बा व्यवधान है और कभी–कभी इतने लम्बे व्यवधान के

पश्चात् पुरानेपन की परिस्थितियों को सही रूप में पहचानना भी कठिन हो जाता है। इसलिए वर्तमान सन्दर्भ में रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचारों को ठीक से समझने में भी कठिनाई होती है, किन्तु फिर भी टैगोर के शिक्षा–दर्शन का वर्तमान सन्दर्भ में विश्लेषण करना समीचीन होगा।

हर महापुरूष के विचार कुछ अंशों में तत्कालीन परिस्थितियों से बँधे रहते हैं और कुछ अंशों में वे तत्कालीन परिस्थितियों से मुक्त होकर जीवन की शाश्वत चिन्तन धारा में सदा–सदा के लिए प्रवाहित होते रहते हैं। जितना अधिक जिस महापुरूष के विचार जीवन के शाश्वत मूल्यों से सम्बन्ध रखते हैं उतना ही अधिक वह महापुरूष महान और उसका व्यक्तित्व विश्वव्यापी स्वरूप धारण कर लेता है। वर्तमान सन्दर्भ में हमें टैगोर के शिक्षा–दर्शन को इसी दृष्टि से देखना है और यह समझने का प्रयास करना है कि क्या टैगोर के विचार केवल तत्कालीन उपयोग के थे या उसमें ऐसे भी तत्व थे जो स्थायी अथवा चिरकालिक प्रभाव रखते हैं।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा–सम्बन्धी विचार :–

रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा–दर्शन पर उनके परिवाद का विशेष प्रभाव पड़ा। टैगोर के परिवार के सभी सदस्य प्रगतिशील विचारों वाले थे। उनका परिवार विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक आन्दोलनों का केन्द्र था। टैगोर ने शिक्षा के क्षेत्र में काफी कार्य किया। इन्होंने 1901 ई0 में शान्ति निकेतन में एक आवासीय स्कूल स्थापित किया। यह ब्रह्मचर्य आश्रम की शुरूआत थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने यद्यपि अध्यापन का पेशा नहीं अपनाया था किन्तु फिर भी इन्हें एक व्यवहारिक शिक्षाशास्त्री के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। इन्होंने अपने तीव्र बुद्धि का प्रयोग करके ही 'स्व शिक्षा' द्वारा शिक्षा एवं उसके रहस्यों का अनेक प्रकार से अनुभव तथा ज्ञानार्जन किया। जिस समय भारत शिक्षा के क्षेत्र में पश्चिमी देशों का अन्धानुकरण कर रहा था उस समय टैगोर ने भारतीय जीवन के अनुकूल शिक्षा–प्रणाली की खोज की थी। उन्होंने ऐसी शिक्षा–प्रणाली की वकालत की थी जो मनुष्य के नैतिक स्तर को ऊँचा उठा सके। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शिक्षा का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है। टैगोर ने अपनी पुस्तक 'पर्सनलिटी' में शिक्षा के अर्थ के बारे में लिखा है – ''सर्वोत्तम शिक्षा वही है, जो सम्पूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है।''[1]

टैगोर के विचार में शिक्षा का रूप अत्यन्त व्यापक है। टैगोर ने शिक्षा में प्राचीन भारतीय आदर्श को स्थान दिया है। यह आदर्श है – 'सा विद्या या विमुक्तये'। इस आदर्श के अनुसार शिक्षा मनुष्य को आध्यात्मिक ज्ञान देकर उसे जीवन और मरण से मुक्ति प्रदान करती है। उनका कहना था कि शिक्षा न केवल आवागमन से बल्कि आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और मानसिक दास्ता से भी मनुष्य को मुक्ति प्रदान करती हैं। अतः मनुष्य को शिक्षा द्वारा उस ज्ञान का संग्रह करना चाहिए जो उसके पूर्वजों द्वारा संचित किया जा चुका है। टैगोर ने स्वयं लिखा है – ''सच्ची शिक्षा संग्रह किये गये लाभप्रद ज्ञान के प्रत्येक अंग के प्रयोग करने में, उस अंग के वास्तविक स्वरूप को जानने में तथा जीवन के लिए सच्चे आश्रम का निर्माण करने में हैं।''[2]

टैगोर के अनुसार शिक्षा एक सुधारक एवं व्यापक प्रक्रिया है जो व्यक्ति में उत्तम गुणों को विकसित करती है। सच्चे ज्ञान से आत्मप्रकाश तथा आत्मानुभूति उत्पन्न होती है। टैगोर के शब्दों में – ''शिक्षा जीवन के साहसिक कार्य का

स्थायी अंग है। यह विद्यार्थियों के सुविधानुसार अज्ञान–रोग के अस्पताल में दिये जाने वाले दुःखदायी इलाज के समान नहीं, बल्कि यह उनकी मानसिक शक्ति की स्वस्थ एवं प्राकृतिक अभिव्यक्ति है।''[3]

टैगोर की शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना था। वह व्यक्ति को अज्ञान रूपी अन्धकार के वातावरण से बाहर निकालकर उसे ज्ञान रूपी प्रकाश की ओर ले जाना चाहते थे। शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है – ''शिक्षा का तो उद्देश्य है बाल्य जीवन की उफनती हुई विपुलता, उसके सम्मोहन और सरल निश्छलता से निपटने रहने के अनुभव द्वारा सृजनात्मक संभावनाओं के भीतर ऐसी निस्सीम स्वतन्त्रता का प्रावधान, जो कर्म का ब्याज बनकर प्रस्तुत क्रीड़ा से प्रसूत आनन्द के प्रचुर अवसर प्रदान करें। अनुसंधान का कर्म और ऐसा कर्म जो क्रीड़ा का ब्याज रूप बने, नित नूतन अनुभवों की धारावाहिकता की जिसमें फसलें हों, बालक की अपनी बृद्धि हेतु जहाँ ऐसी ही स्वतन्त्रता का प्रदाय हो कि जिसकी अपनी कोमल टहनियों के लिए एक युवा वृक्ष मांग करें, जो आत्मविस्तार का ऐसा क्षेत्र हो जहाँ युवा जीवन अपने प्रशिक्षण और अपने सुख की उपलब्धि कर सकें।''[4]

टैगोर का कहना था कि भारतीय बच्चे शारीरिक दृष्टि से कमजोर हैं। वे अनेक बीमारियों से घिरे रहते हैं तथा कुपोषण का शिकार भी होते हैं। इस कारण उनका शारीरिक विकास संभव नहीं हो पाता। शारीरिक विकास की शिक्षा देकर इसे कुछ सीमा तक कम किया जा सकता है। शारीरिक शिक्षा के लिए टैगोर स्वतन्त्र एवं उन्मुक्त वातावरण चाहते थे जो बालक को प्रकृति के सुरम्य वातावरण में ही मिल सकता है। शारीरिक शिक्षा के सम्बन्ध में टैगोर ने कहा है –''पेड़ों पर चढ़ने, तालाबों में डुबकियाँ लगाने, फूलों को तोड़ने तथा प्रकृति माता के साथ नाना प्रकार की अठखेलियाँ करने से बालक के शरीर के विकास के साथ ही साथ मस्तिष्क को आनन्द तथा बचपन के स्वाभाविक आवेगों की सन्तुष्टि प्राप्त होती है।''[5]

टैगोर बच्चे के बौद्धिक विकास पर भी बल दते हैं। परन्तु बौद्धिक विकास से तात्पर्य केवल कुछ विषयों के ज्ञान मात्र से नहीं था बल्कि जीवन की वास्तविक क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लेने से था। केवल पुस्तकों पर आश्रित रहने से मनुष्य का बौद्धिक विकास नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में टैगोर ने अपने निबन्ध 'शिक्षा में उलटफेर' में लिखा है – ''हम बी0ए0, एम0ए0 पास करते रहें, पुस्तकों के ढेर के ढेर निगलते रहें, पर इससे हमारी बौद्धिक शक्ति परिपक्व नहीं होती, किसी चीज को हम कसकर पकड़ नहीं पाते, किसी चीज की आद्योपान्त रचना नहीं कर पाते।''[6]

विद्यालय सामाजिक विकास की एक महत्वपूर्ण संस्था है। विद्यालय में प्रत्येक धर्म, जाति, सम्प्रदाय, राज्य तथा क्षेत्र से विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए आते हैं। विद्यालय में प्रत्येक छात्र एक–दूसरे के सम्पर्क में आता है। अतः वहीं से बच्चे को ऐसी शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए जिससे बच्चा समाज के सभी लोगों के साथ घुल–मिल सके। तभी उसका सामाजिक विकास सम्भव होगा और वह समाज की उन्नति के लिए कार्य करेगा। टैगोर का कहना था कि ''बालक में सामाजिक गुणों का विकास करना शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। स्वंय में सामाजिक गुणों का विकास करके ही बालक अपनी तथा समाज की प्रगति में सहयोग कर सकता है।''[7]

टैगोर ने प्रचलित शिक्षण–विधियों की कड़ी आलोचना की। टैगोर ने कहा कि परम्परागत शिक्षण–विधियां केवल निर्देश देती हैं। वे बच्चों को प्रेरित नहीं कर पाती। उन्होंने अपनी शिक्षण–विधियों में भ्रमण विधि, तर्क विधि, वाद–विवाद

विधि, क्रिया विधि, स्वाध्याय विधि, प्रत्यक्ष विधि तथा प्रश्नोत्तर विधि आदि का प्रयोग किया है। क्रिया विधि के बारे में टैगोर कहते हैं कि क्रिया शरीर और मस्तिष्क दोनों को शक्ति देती है। बालक जो भी शारीरिक क्रिया करता है उसका शरीर और मस्तिष्क दोनों पर प्रभाव पड़ता है। टैगोर शारीरिक क्रिया को महत्व देते हुए कहते हैं – ''कक्षा में भी मैं अपने बालक एवं बालिकाओं को उछलने, पेड़ पर चढ़ने, भागने, किसी बिल्ली अथवा कुत्ते के पीछे दौड़ने अथवा फल तोड़ने का अनुमति दूँगा।''[8]

टैगोर के अनुसार पाठ्यक्रम इतना व्यापक होना चाहिए कि उससे बच्चे के जीवन के सभी पक्षों का विकास हो सके। टैगोर पाठ्यक्रम में ऐसी व्यवस्था चाहते थे कि जिससे विद्यार्थियों में राष्ट्रीयता एवं अर्न्तराष्ट्रीयता की भावना का विकास हो सके। उनका कहना था कि स्कूल का पाठ्यक्रम समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिए। टैगोर के पाठ्यक्रम में पाठ्य विषयों के अलावा क्रियाओं तथा वास्तविक जीवन का मिश्रण है। उन्होंने पाठ्यक्रम में भाषा, साहित्य, सामाजिक विज्ञान, गणित, कला, संगीत, नृत्य आदि विषयों को स्थान दिया है। कला, संगीत, नृत्य आदि क्रियाओं को पाठ्यक्रम में शामिल करने के बारे में टैगोर ने कहा है – ''बालक के जीवन में सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिए संगीत अति आवश्यक है। हमारे देश के कुछ कथित बुद्धिमान मनोरंजन की अवहेलना करते हैं तथा संगीतमय आनन्द को ओछेपन की संज्ञा देते हैं व कला को निम्न स्तर का मानते हैं। यह अत्यधिक दरिद्रता की निशानी है तथा वास्तविक कार्यों के प्रति अरूचि है।''[9]

टैगोर रूढ़ीवादी स्कूलों के अनुशासन के विरूद्ध थे। वे छात्रों को स्कूल में अधिक से अधिक स्वतन्त्रता देने के पक्षधर थे। स्वतन्त्रत बच्चे की प्रकृति है। अतः बच्चे की स्वतन्त्रता को दबाया नहीं जाना चाहिए। वह आत्मनिर्धारित अनुशासन में विश्वास रखते थे। उनका विचार था कि बच्चे को बाहरी दबाब द्वारा कुछ समय तक तो अनुशासन में रखा जा सकता है किन्तु जैसे ही बाहरी दबाब हटता है बच्चे फिर अनुशासनहीन हो जाते हैं। टैगोर ने मुक्त तथा स्व अनुशासनन पर बल दिया है। टैगोर का कहना है – ''मानसिक स्वतन्त्रता ही शिक्षा का लक्ष्य है जिसकी पूर्ति स्वतन्त्रता के मार्ग द्वारा ही हो सकती है, चाहे जीवन की स्वतन्त्रता के साथ भी कई खतरे और दायित्व जुड़े हुए हैं।''[10]

टैगोर ने विद्यार्थियों को सुधारने के लिए दण्ड देने का विरोध किया है। टैगोर का विश्वास था कि छात्र को दण्ड देने की अपेक्षा यदि उसके साथ प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाये तो वह शीघ्रता से सुधर सकता है। दण्ड के सम्बन्ध में टैगोर ने कहा है – ''यदि किसी विद्यार्थी से कोई अपराध हो जाये तो उसे हमारे नियमानुसार प्रायश्चित करना होगा। दण्ड और प्रायश्चित में बहुत अन्तर है। दण्ड दूसरा व्यक्ति देता है, परन्तु स्वंय अपने आप का सुधार करना और उससे भविष्य के लिए दूर रहने की चेष्ठा को प्रायश्चित कहा जाता है। दण्ड भुगते बिना मन वास्तविक स्थिति पर नहीं आता परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि दूसरों के द्वारा स्वंय को दण्ड दिलाना उचित नहीं।''[11]

शिक्षण–प्रक्रिया के मुख्यता तीन पक्ष हैं – छात्र, शिक्षक तथा पाठ्यक्रम। इनमें सबसे महत्वपूर्ण पक्ष छात्र ही हैं। शिक्षण की पूरी प्रक्रिया छात्र के इर्द–गिर्द ही घूमती है। इस प्रकार शिक्षा की सारी प्रक्रिया बाल–केन्द्रित है। टैगोर छात्रों को स्वावलम्बी और स्वाध्याय होने की प्रेरणा देते हैं। वे छात्रों में मानवता की भावना भरना चाहते हैं। टैगोर छात्रों को सादा और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने के लिए कहते हैं। वे छात्र की स्वतन्त्रता के पक्षधार है। टैगोर ने अपने

लेख 'छात्रेण प्रति सम्भाषण' में छात्रों से आवाहन किया कि वह शिक्षा को वास्तविक जीवन से जोड़े और राष्ट्र के जीवन में समस्त पहलुओं से जाग्रत करें।

शिक्षक के सम्बन्ध में टैगोर के विचार पूर्ण रूप से परम्परावादी थे। इनकी दृष्टि में शिक्षक को ज्ञानी, संयमी और बच्चों के प्रति समर्पित होना चाहिए। शिक्षक के स्थान के सम्बन्ध में वह मानते हैं कि उनके समक्ष जो बालक आता है वह दैवीय प्रकाश युक्त होता है और शिक्षक का प्रमुख दायित्व है – इस प्रकाश को देखना। शिक्षक को बाल–मनोविज्ञान का ज्ञान होना परम आवश्यक है। अपने भाषण 'स्कूल मास्टर' में उन्होंने शिक्षक को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए लिखा है – '' जिस मार्ग की तलाश हम इधर–उधर करें, अन्त में हम इस अड़िग सत्य पर पहुंचते हैं कि शिक्षा केवल शिक्षक द्वारा ही दी जा सकती है।''[12]

छात्र–शिक्षक सम्बन्धों की चर्चा करते हुए टैगोर ने कहा है कि शिक्षक को व्यापारी नहीं होना चाहिए। छात्र–शिक्षक सम्बन्ध स्वार्थ पर आधारित नहीं होने चाहिए। यह सम्बन्ध आत्मीय होना चाहिए। टैगोर ने गुरू को एक लौह चुम्बक की भांति बनने को कहा है। जिस प्रकार लोहे की चुम्बक लोहे को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है ठीक उसी प्रकार शिक्षक का व्यवहार भी ऐसा होना चाहिए जिससे छात्र उसके व्यवहार से आकर्षित हो सकें और उनका अनुकरण कर सकें। टैगोर गुरू–शिष्य सम्बन्धों को इतनी ऊँचाई प्रदान करना चाहते हैं कि गुरू और शिष्य दोनों में कोई अन्तर न रहे। गुरू–शिष्य सम्बन्धों के विषय में टैगोर ने लिखा है – ''जब हमारे शिक्षक यह समझने लगेंगे कि हम गुरू के आसन पर बैठे हैं और हमने अपने जीवन द्वारा अपने शिष्यों में जीवात्मा फूंकनी है, अपने ज्ञान द्वारा उनके हृदय में ज्ञान और विद्या की ज्योति जगानी है, अपने प्रेम द्वारा बालकों का उद्धार करना है, उनके अमूल्य जीवन का सुधार करना है, उस समय वे सत्य रूप से स्वाभिमान के अधिकारी बन सकेंगे और उसी समय वे शिष्यों के निकट धर्म के विधान तथा प्राकृतिक नियम के अनुसार पूज्य बन सकेंगे।''[13]

स्त्री–शिक्षा पर टैगोर ने बहुत अधिक बल दिया है। वह यह मानते हैं कि यदि हम समाज का नवनिर्माण करना चाहते हैं तो हमें स्त्रियों को भी पुरूष के समान शिक्षित करना होगा। शान्ति निकेतन में टैगोर ने स्त्री शिक्षा की आवश्यकता और महत्व को साकार रूप देने हेतु 1908 ई0 में 'स्त्री शिक्षा विभाग' तथा 1922 ई0 में 'नारी भवन' स्थापित किया। यहां स्त्रियों को शास्त्रीय विषयों की शिक्षा दी जाती थी। टैगोर का मानना था कि चूँकि स्त्री एक बेटी, बहिन, पत्नी और माँ है। इसलिए उसे शिक्षित करना आवश्यक है। टैगोर के शब्दों में –''विशुद्ध ज्ञान के क्षेत्र में पुरूष और स्त्री में कोई भेद नहीं है, व्यवहारिक उपयोगिता के क्षेत्र में अन्तर हो सकता है। स्त्री को परिपक्व मानव प्राणी बनने के लिए विशुद्ध ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और स्त्री बनने के लिए उपयोगी ज्ञान।''[14]

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भारतीय जनता की दीन–हीन दशा देखी थी। भारतीय जनता के पिछड़ेपन के लिए वह शिक्षा के अभाव को उत्तरदायी मानते थे। इस कारण वह जनसाधारण की शिक्षा व्यवस्था पर बल देते थे जिससे कि समाज का उत्थान हो सके। टैगोर ने जन–शिक्षा को व्यापक रूप में लिया है। टैगोर ने कहा कि हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या गांव में निवास करती है। इसलिए जन–शिक्षा में ग्रामीण समस्याओं को विशेष स्थान दिया जाये। जन–शिक्षा की आवश्यकता को और अधिक स्पष्ट करते हुए टैगोर ने कहा है कि – ''भोग्य वस्तुओं का भण्डार जमा हो उठे, और रसोई घर में चूल्हे पर बर्तन चढ़ा हो, तो भी उसे भोज नहीं कहा जाता। आँगन में कितनी पत्तल लगी हैं,

कितने लोगों को न्यौता दिया गया है, इसी में है भोज की मर्यादा। हम एजुकेशन शब्द को दोहराकर मन ही मन खुश होते हैं, लेकिन इसमें भी भण्डार–घर का ही रूप है – बाहर आँगन सूना पड़ा है। स्कूल–कॉलिजों में शिक्षा के आलोक के लिए बड़ी सी लालटैन जलाई गई है लेकिन वह आलोक दीवारों से अवरूद्ध हो जाये तो यह हमारा दुर्भाग्य होगा। चित्र की अभिव्यक्ति पट भूमि पर ही होती है, उसी तरह सारे देश की पृष्ठभूमि पर ही शिक्षा परिस्फुट हो सकती है। अपनी व्यापक पृष्ठभूमि से अलग होकर शिक्षा अस्पष्ट और असम्पूर्ण बन जाती है।''[15]

विद्यालय के सम्बन्ध में टैगोर का कहना था कि विद्यालय संस्कृति को सुरक्षित रखने व कला, संगीत और साहित्य का ज्ञान प्रदान करने का एक सशक्त माध्यम है। टैगोर का विचार था कि विद्यालय में भौतिक तथा सामाजिक दोनों दृष्टियों से संतुलित तथा उद्दीपक पर्यावरण होना चाहिए। टैगोर विद्यालय को प्रकृति की सानिध्य में स्थापित करने के पक्षधर थे। उन्होंने अपने शांति निकेतन की स्थापना भी हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त वातावरण में की थी। विद्यालय के बारे में टैगोर ने कहा – ''यदि हम आदर्श विद्यालय स्थापित करना चाहते हैं तो हमें नगर से दूर, वन में, खुले आकाश के नीचे विशाल मैदान में, प्राकृतिक वृक्षों के मध्य उसका प्रबन्ध करना चाहिए। वहाँ अध्यापक सांसारिक चहल–पहल से पृथक पढ़ाने में लीन रहेंगे और विद्यार्थी ज्ञान–चर्चा के मैदान में उन्नति करते चले जायेंगे।''[16]

निष्कर्ष :–

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि टैगोर का शिक्षा के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान है। शिक्षा देश के भविष्य की नींव है। उस नींव को मजबूत करने में पिछले 65 वर्षों में लापरवाही हुई है। शिक्षा में सुधार का कार्य इतना बड़ा था कि उसका राष्ट्रीय चुनौती के रूप में लिया जाना चाहिए था लेकिन ऐसा नहीं किया गया और उसे जितनी प्राथमिकता मिलनी चाहिए थी, उतनी नहीं मिल पायी। शिक्षा के क्षेत्र में आज जैसी अराजकता और दिशाहीनता व्याप्त है, वैसी शायद पहले कभी नहीं थी। युद्ध, हिंसा, मूल्यहीनता और भौतिकवादी आँधी से त्रस्त मानवता को उसके विपन्न वर्तमान और अंधकारमय भविष्य में मार्गदर्शन के लिए रवीन्द्रनाथ टैगोर का शिक्षा–दर्शन आशादीप बन सकता है। इनका शिक्षा–दर्शन वर्तमान शिक्षा के दोषों को दूर करके आदर्श शिक्षा–प्रणाली की संरचना में सार्थक योगदान दे सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि इनके विचारों और प्रयोगों को समझा जाये और उनपर अमल किया जाये।

सन्दर्भ – सूची

1. जी0 एस0 डी0 त्यागी (2004) शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर, पृ0–402।
2. पी0 डी0 पाठक एवं अन्य (2006) शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर, पृ0–377।
3. जे0 एस0 वालिया (2007) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, जालंधर : अहमपाल पब्लिशर्स, पृ0–408।
4. सरोज सक्सैना (2004) शिक्षा के सिद्धान्त, आगरा : साहित्य प्रकाशन, पृ0–257।

5. पी0 डी0 पाठक एवं अन्य (2006) शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर, पृ0–378।

6. रवीन्द्रनाथ ठाकुर (2007) रवीन्द्रनाथ का शिक्षा–दर्शन – शिक्षा प्रणाली, दिल्ली : सर्वोदय साहित्य संस्थान, पृ0–74।

7. गिरीश पचौरिया (1992) शिक्षा के सिद्धान्त, मेरठ : लॉयल बुक डिपो, पृ0–352।

8. रमाकान्त दुबे (1998) विश्व के कुछ महान शिक्षाशास्त्री, मेरठ : मीनाक्षी प्रकाशन, पृ0–189।

9. हिमांशु भूषण मुखर्जी (1962) एजुकेशन फॉर फुलनेस, दिल्ली : एशिया पब्लिशिंग हाउस, पृ0–402।

10. जे0 एस0 वालिया (2007) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, जालंधर : अहमपाल पब्लिशर्स, पृ0–411।

11. रवीन्द्रनाथ ठाकुर (2007) रवीन्द्रनाथ का शिक्षा–दर्शन, दिल्ली : सर्वोदय साहित्य संस्थान, पृ0–153।

12. रवीन्द्रनाथ ठाकुर (2007) रवीन्द्रनाथ का शिक्षा–दर्शन – स्कूल मास्टर, दिल्ली : सर्वोदय साहित्य संस्थान, पृ0–78।

13. रवीन्द्रनाथ ठाकुर (2007) रवीन्द्रनाथ का शिक्षा–दर्शन, दिल्ली : सर्वोदय साहित्य संस्थान, पृ0–154।

14. सरोज सक्सैना (2004) शिक्षा के सिद्धान्त, आगरा : साहित्य प्रकाशन, पृ0–260।

15. रवीन्द्रनाथ ठाकुर (2007) रवीन्द्रनाथ का शिक्षा–दर्शन – शिक्षा का विस्तार, दिल्ली : सर्वोदय साहित्य संस्थान, पृ0–108।

16. रवीन्द्रनाथ ठाकुर (2007) रवीन्द्रनाथ का शिक्षा–दर्शन – शिक्षा–प्रणाली, दिल्ली : सर्वोदय साहित्य संस्थान, पृ0–149।